Purva Mimaansa | Refereed | Peer Reviewed
ISSN: 0976-0237 | Volume 15, Issue March 2024 | Impact Factor 5.504

सांस्कृतिक पूंजी में संगीत के स्वर

परमजीत कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, वाद्य संगीत विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय, अम्बाला छावनी

सारांश

मानव का गृहस्थ जीवन धन के इर्द गिर्द घूमता है। यह धन उसे उसके वित्तीय साधन - व्यापार, कृषि, सेवा, मनोरंजन या किसी अन्य क्षेत्र में कार्य करने से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसका लोगों के साथ सम्बन्ध तथा लोगों की उससे जान पहचान, उसे अनेक प्रकार के कार्य करने में सहायक होते है, इसे वित्तीय पूंजी के विपरीत सामाजिक पूंजी कहते है। किसी व्यक्ति में संनिग्ध ज्ञान, कौशल, व्यवहार, व्यक्तित्व इत्यादि गुण उसे पारिवारिक विरासत से प्राप्त होते है और समाजीकरण से विकसित होते है - यही मानव की सांस्कृतिक पूंजी है।

संगीत सदैव ही संस्कृति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व रहा है। यह भाषा, क्षेत्र, राष्ट्र, संस्कृति इत्यादि में सौंदर्य और अभिव्यक्ति के कारण विश्व के सभी समुदाय और समाज का शक्तिशाली माध्यम है। अलजोरियन समाज शास्त्री पियरे बार्डियू (Pierre Bourdieu) की सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा से संगीत शिक्षा के विकास तथा समाज में उसके वितरण को समझा जा सकता है तथा आने वाली चुनौतियों का हल किया जा सकता है। संगीत के प्रजातांत्रिकरण से संगीत शिक्षा समाज के विभिन्न वर्गों तथा स्त्रियों में सम्मानपूर्वक स्वीकृत की जा रही है। संगीत कलाकार का व्यक्तित्व और पहचान, सामाजिक गतिशीलता, नैतिकता तथा आध्यात्मिकता इत्यादि गुण उसकी सांस्कृतिक पूंजी को निरंतर बढ़ाते है। सांस्कृतिक पूंजी एक शक्ति है जिसे आर्थिक पूंजी द्वारा ख़रीदा जा सकता है।

मुख्य शब्द:- संगीत शिक्षा; सांस्कृतिक पूंजी; सामाजिक पूंजी; अवधारणा; गतिशीलता

परिचय

कम आयु वाले परिवारों में शिक्षा के न्यूनतम साधन होते है जिस से संगीत तो क्या, किसी भी क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण करना कठिन है। पियरे बार्डियू निर्धन तथा निम्न मध्य वर्गीय परिवारों में पूंजी के आभाव को शिक्षा प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक मानते है। यहाँ पूंजी का अर्थ हम उस संपत्ति से लेते है जिसे ग्रहण, संगृहीत और आवश्यकता पड़ने पर अधिक लाभ के लिए निवेश किया जा सके। इसे हम आर्थिक या वित्तीय पूंजी कहते है। इसके अतिरिक्त मानव जीवन के समुचित विकास हेतु चार प्रकार की अन्य पूंजियों की आवश्यकता रहती है -

मानव पूंजी - (स्वास्थ्य, शिक्षा, ज्ञान, कौशल, कार्य करने की क्षमता)

प्राकृतिक पूंजी - (भूमि, पानी, वन्य जीवन, खाद्य पदार्थ इत्यादि)

भौतिक पूंजी - (परिवहन, सड़कें,वाहन, ऊर्जा, संचार इत्यादि)

सामाजिक पूंजी - (नेटवर्क, सम्बन्ध, समूह कनेक्शन)"[1]

सामाजिक पूंजी का एक और घटक सांस्कृतिक पूंजी है । संस्कृति हमारे रीतिरिवाजों, मान्यताओं तथा भरोसे का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण है जिसमें समय समय पर परिवर्तन होते रहते है। संगीत, नृत्य, रंगमंच, साहित्य, मूर्तिकला इत्यादि सांस्कृतिक पूंजी को समृद्ध करते है ।

सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा जिसका प्रतिपादन अलजोरियन समाज शास्त्री पियरे बार्डियू ने 1970 के दशक में अपनी पुस्तक "कल्चरल रिप्रोडक्शन तथा सामाजिक रिप्रोडक्शन" में किया । सांस्कृतिक पूंजी सामाजिक पूंजी को संदर्भित करती है जो आर्थिक साधनों से परे सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा देती है।"[2] इसी गतिशीलता के कारण सांस्कृतिक पूंजी का अनुपात उच्च वर्ग में सबसे अधिक है, मध्य वर्ग में उससे कम और निम्न वर्ग में सबसे कम है । "सांस्कृतिक पूंजी वास्तव में ज्ञान, कौशल तथा व्यवहार का संचय है, जिसे ग्रहण कर कोई अपनी सांस्कृतिक चेतना, ज्ञान और क्षमताओं का प्रदर्शन कर सकता है ।"[3]

संगीत में सांस्कृतिक पूंजी का प्रभाव

पियरे बार्डियू ने सांस्कृतिक पूंजी को तीन भागों में बांटा है - (1) सन्निहित सांस्कृतिक पूंजी (2) वस्तु परक सांस्कृतिक पूंजी (3) संस्थागत सांस्कृतिक पूंजी ।

(1) सन्निहित सांस्कृतिक पूंजी किसी व्यक्ति में विद्यमान अमूर्त ज्ञान है जो समाजीकरण से सक्रिय, सचेत और प्रकट होता है । उदाहरण के लिए संगीत सेवी परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे में उसका ज्ञान, कौशल, रूचि तथा व्यव्हार उसकी शिक्षा को संगीतोन्मुख करने में सहायक होता है।

(2) वस्तुपरक पूंजी - ऐसी मूर्त भौतिक वस्तुएं जिनको ग्रहण करने से किसी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है । संगीत के विद्यार्थी के लिए उसकी पुस्तकें, वाद्य, इलेक्ट्रिक उपकरण वस्तुपरक पूंजी है । बहुत से विद्यालयों में संगीत कक्ष की व्यवस्था न होने से संगीत विषय का अध्ययन सही से नहीं हो पाता है । परिणाम स्वरुप निर्धन बच्चे इस विषय से अछूते रह जाते है ।

(3) संस्थागत सांस्कृतिक पूंजी - ऐसे माप दंड जिनसे समाज में सामाजिक पूंजी को मापा जा सकता है । शिक्षा द्वारा प्राप्त योग्यता, उपाधि, पुरस्कार या सम्मान जिनके आधार पर रोज़गार मिलता है । उदाहरण के लिए आई टी सी संगीत रिसर्च अकादमी कलकत्ता या इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ से उत्तीर्ण की गई डिग्री साधारण महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों की

PURVA MIMAANSA

तुलना में छात्रों को अच्छे रोज़गार के अवसर देती है।

सांस्कृतिक पूंजी की कुछ विशेषताएं है -

(1) सांस्कृतिक पूंजी सग्रहित नहीं की जा सकती। समाज में इसका ग्राफ स्थायी नहीं रहता। ME too Campaign के अंतर्गत अनेक लोगों की सांस्कृतिक पूंजी में गिरावट भी आई।

(2) जब तक आर्थिक पूंजी का वितरण समाज में सामान रूप से नहीं होता - सांस्कृतिक पूंजी भी समाज के सभी वर्गों में बराबर नहीं हो सकती।

(3) सांस्कृतिक पूंजी का प्रयोग सफलता और सामाजिक गतिशीलता के लिए किया जाता है। पं० रवि शंकर ने अपने देश में ही नहीं विश्व के अनेक देशों में अपनी सफलता का परचम लहराया।

(4) सांस्कृतिक पूंजी एक शक्ति है जो वित्तीय पूंजी में भी संबर्धन कर सकती है। मुंबई की रेणू मंडल (एक भिखारी) का गाना सोशल मीडिया पर वायरल होने से वह एक स्टार परफ़ॉर्मर बन गई। इसी प्रकार टी वी के रियलिटी शो, यू ट्यूब तथा इंस्टाग्राम के माध्यम से अनेक नए कलाकार ख्याति प्राप्त कर चुके है।

बार्डियू ने अपनी अनेक पुस्तकों में समाज में पूंजी के असमान वितरण के लिए शिक्षा के अनियमित प्रसारण को उत्तरदायी ठहराया है। संगीत के क्षेत्र में हम देखते है कि जबतक संगीत बनाने वाले कलाकार केवल उच्च वर्ग या सामन्तिक वर्ग के मनोरंजन तक सीमित थे, हमारे देश का सांस्कृतिक विकास बहुत धीमा रहा। स्वतंत्रता से पूर्व मुगलकाल में शास्त्रीय संगीत तथा अन्य संगीत के समारोह केवल दरबारों में हुआ करते थे और इनका आनंद केवल शासक वर्ग ही ले सकता था। दरबारी गायकों तथा वादकों को अनेक प्रकार के पुरस्कार तथा जागीरें सौंप कर सम्मानित किया जाता था। निम्न वर्ग के गायकों तथा वादकों को मिरासी, चारण, भाट इत्यादि नामों से जाना जाता था। ऐसे कलाकारों की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी और समाज में भी इनकी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा न के बराबर थी। ब्रिटिश शासन काल में भी संगीत उत्पादक तथा श्रोता का सम्बन्ध घनिष्ट न हो सका। मुग़ल शासन के समाप्त होने से वहाँ पर कार्य करने वाले यशस्वी कलाकार छोटी रियासतों के दरबारों में चले गए या फिर अपने घराने स्थापित कर घरानेदार शिक्षा देने लगे। 19वी शताब्दी के अंतिम दशकों में संगीत विद्वानों ने संगीत शिक्षा को संस्थागत ढंग से देने के प्रयास प्रारम्भ किये। परिणाम स्वरुप लाहौर में 1901 में संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। पं० विष्णु नारायण भातखण्डे ने पांच संगीत सम्मलेन करवाकर संगीत शिक्षा के द्वार दक्षिण के कुछ राज्यों को छोड़ कर, भारत के सभी राज्यों में खोल दिए। इसका परिणाम यह रहा कि स्वतंत्रता के पश्चात् संगीत को प्रथम विषय मानकर इसकी शिक्षा विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयो में प्रारम्भ हुई। संगीत शिक्षा के प्रजातंत्रीकरण से समाज का कोई भी वर्ग, स्त्री हो या पुरुष, इस कला को सीख सकता है। गरीबी के कम होने से तथा निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा

विधेयक, 2009 के पारित होने से संगीत विषय की ओर लोगों का आकर्षण निरंतर बढ़ रहा है। शिक्षा का समान अधिकार मिलने से समाज में सांस्कृतिक पूंजी को बढ़ावा मिलेगा।

आज नेटवर्क तथा सम्पर्क माध्यम अधिकतर इंटरनेट पर आधारित है जिन से हम विश्व के भिन्न - भिन्न देशों की संस्कृति से सदृश्य होने का अवसर पाते है। इससे हमारी रुचियाँ, सुनने की आदतें तथा हमारे डी एन ऐ में उपस्थित ज्ञान गौण हो जाता है और हम विदेशी संस्कृति की ओर आकर्षित होने लगते है। परिणाम स्वरुप बार्डियू द्वारा घोषित सन्निहित सांस्कृतिक पूंजी द्वारा अपने छिपे ज्ञान को प्रदर्शित करने वाली विचारधारा को चुनौती मिलती है। आज एक पंजाबी संगीत सुनने वाला व्यक्ति तमिल के "कोलावेरी" गीत सुनने में आनंद लेता है। दूसरी ओर सुप्रसिद्ध पंजाबी गायक स्वर्गीय सिद्धू मुसेवाला का गीत विदेशो में धूम मचाता है। इस प्रकार लोगो की रूचि में आये परिवर्तन को कुछ विद्वान भिन्न - भिन्न नाम देते है, जैसे - सर्वभक्षी (Omnivore), पर परागण (Cross Pollination), संकरण (Hybridization) इत्यादि। मेरे विचार से ऐसे परिवर्तनों के लिए हम अपनी सामेटिक कोशिकाओं का उदहारण दे सकते है। कोशिका के दो भाग होते है - केन्द्रक (जिसमें डी एन ऐ भी स्थायी रूप से स्थित होते है) तथा सायोटोप्लाज़म (यह वातावरण के बाहरी परिवर्तनों को सहन कर स्वयं को बदल सकता है) अर्थात परम्पराओं, रुचियों तथा रुझानों में जो भी परिवर्तन हो रहे है यह बाहरी है, इन्हे हम सायोटोप्लाज़िमक विविधता कह सकते है। ऐसे परिवर्तन विभिन्न संस्कृतियों के आदान प्रदान, अंतर्जातीय तथा अंतर्राष्ट्रीय शादियों के चलते ज्यादा मुखरित हो रहे है। समृद्ध देशों की संस्कृति के अप्रत्याशित आयात से देशी संस्कृति का हनन हो रहा है। तथापि भारतीय शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत तथा आध्यात्मिक संगीत भारतीय सांस्कृतिक पूंजी परिष्कृत करने में अहम् योगदान दे रहा है।

सांस्कृतिक पूंजी को ग्रहण करने में संगीत कलाकार तथा उससे सम्बद्ध लोग अनेक प्रकार से लाभान्वित होते है, उनकी कुछ उपलब्धियां इस प्रकार है -

1. पहचान और व्यक्तिगत विकास: संगीत किसी व्यक्ति को उसके कार्य द्वारा पहचान और उपलब्धि दिलवाने में सक्षम है। संगीत से सम्बद्ध व्यक्ति अपने कार्य अनुसार ध्रुपद गायक, ख्याल गायक, ग़ज़ल गायक, सितार वादक, सरोद वादक, तबला वादक इत्यादि नामों द्वारा जाना जाता है। इसका अभ्यास करने वाले कलाकार सुनने की भी अद्वितीय क्षमता रखते है। इसके अतिरिक्त उसमें कठिन परिश्रम, अनुशासन, समयानुकूलता इत्यादि गुण क्रियाशील और आत्मविश्वासी होने की क्षमताएं प्रदान करता है।

2. सामाजिक गतिशीलता: विद्यार्थी जीवन से ही संगीत शिक्षार्थी विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अनेक मंचों पर अपने कार्यक्रम से सम्बन्धी दूसरे विद्यार्थियों तथा अन्य

लोगों से मिलते है। ऐसे मंचों से उनका व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास होता है। संगीत शिक्षा के नए अवसर सब के लिए उपलब्ध होने से समाज के सभी वर्ग नयी सामाजिक अर्थव्यवस्था से लाभान्वित हो रहे है। संगीत शिक्षा के सशक्तिकरण से सांस्कृतिक पूंजी में बढ़ोतरी हो रही है।

3. संगीत में विविधता: समाज में लोग अपनी पसंद अनुसार संगीत सुनना पसंद करते है। उच्च तथा समृद्ध वर्ग शास्त्रीय संगीत, ग्रामीण क्षेत्र में लोक संगीत तथा युवा वर्ग में फ़िल्मी संगीत इत्यादि। ऐसा करने से संगीत बनाने वाले लोगों ने विभिन्न प्रकार का संगीत सृजित किया है जो हर प्रकार के सामाजिक वर्गों तथा राज्यों में पसंद किया जाता है। संगीत की विविधता ने सांस्कृतिक पूंजी को परिष्कृत किया है।

4. नैतिक उत्कर्षता: संगीत शिक्षा विद्यार्थी को जीवन में नैतिक मूल्यों को धारण करने के लिए प्रोत्साहित करती है जिससे वह अपने आचरण में अपने गुरु, माता-पिता, वृद्ध तथा दिव्यांगों के प्रति सम्मान, दया तथा सहानुभूति का भाव उतपन्न कर पाते है। संगीत सभी को अदब तथा भाईचारे का पाठ पढ़ाता है।

5. आध्यात्मिक विकास: संगीत को ईश्वर का सेवक माना जाता है। इसके प्रचार-प्रसार से अनेक धर्मो के लोग अपनी सांस्कृतिक तथा धार्मिक परम्पराओं का संरक्षण करते है। हवेली संगीत, गुरमत संगीत इत्यादि आध्यात्मिक संगीत के विकसित रूप है। ऐसी विरासतीय कला में आज भी ध्रुपद जैसी गायन शैली के अतिरिक्त पुराने वाद्य प्रयोग होते है। गुरमत संगीत के वाद्यों में रबाब, सारंदा, तायुस आदि का विशेष योगदान है।

6. सांगीतिक उपचार: अवसाद, मानसिक थकान, अनिद्रा इत्यादि मानसिक रोगों के उपचार में एलोपैथी पद्धति के अनुसार संगीत थैरेपी का प्रयोग किया जाता है। पश्चमी देशो में इस प्रकार के उपचार के लिए अनेक स्वास्थ्य केंद्र कार्य कर रहे है। भारत में इसके विकास की बहुत संभावनाएं है।

7. सामाजिक मुद्रा: आज संगीत सेवी कलाकार अपनी योग्यता अनुसार सोशल मीडिया पर अपने वीडियो अपलोड करते है और इनका अनुसरण करने वाले श्रोता और दर्शकों द्वारा मिली प्रतिक्रिया के आधार पर कलाकार को वित्तीय लाभ प्राप्त होता है। वीडियो के बीच बीच में जो विज्ञापन दिखाए जाते है इनका लाभ यू ट्यूब या अन्य सोशल मीडिया को होता है। यही लाभ वो कलाकार में बाँट देते है। जिस कलाकार के जितने ग्राहक होंगे उसकी सामाजिक मुद्रा उसी अनुसार तय होती है। यही सामाजिक मुद्रा कलाकार की सांस्कृतिक पूंजी को भी बढाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गों में संगीत शिक्षा के व्यापक प्रचार ने सांस्कृतिक पूंजी को बढ़ाया है और एक न्यायसंगत व सामंजस्यपूर्ण समाज बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संगीत शिक्षा आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, मोबाइल फ़ोन इत्यादि ने

सामाजिक गतिशीलता को त्वरित किया है और ज्ञान तथा पूंजी से लोगों को समृद्ध किया है। जहाँ तक शास्त्रीय संगीत कलाकार के कौशल और कला का प्रश्न है, इस पर कोई समझौता नहीं होना चाहिए। कलाकार के वाद्य का सौंदर्य, उसकी पौशाक, उसकी गाड़ी इत्यादि निःसंदेह उसकी सांस्कृतिक पूंजी की सम्पन्नता का घोतक है परन्तु कला विहीन ठाठ बाठ वाले कलाकार से हमारी सांस्कृतिक विरासत नई पीढ़ी में प्रेषित नहीं की जा सकती। यहाँ "जो दिखता है वो बिकता है" वाली उक्ति काम नहीं कर सकती।

सन्दर्भ सूचि

1. https://youtube/tswygg.96wo
2. https://www.differencebetween.com
3. https://www.carewoodprimaryschool.com

PURVA MIMAANSA